

राजस्थान उच्च न्यायालय की जयपुर पीठ के लिए

डीबी सिविल रिट याचिका संख्या 7205/2023

रामवतार वर्मा पुत्र श्री नाथ मल वर्मा , आयु लगभग 65 वर्ष, लेखक - लकी फार्म हाउस, हरमाडा चुंगी नाका, सीकर रोड, जयपुर । आयकर अपीलीय न्यायाधिकरण, इंदौर में अतिरिक्त आयकर आयुक्त (वरिष्ठ आयकर आयुक्त ) के पद से सेवानिवृत्त।

----याचिकाकर्ता

बनाम

1. भारत संघ, वित्त मंत्री कार्यालय, भारत सरकार, वित्त मंत्रालय, राजस्व विभाग, केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड, नॉर्थ ब्लॉक, नई दिल्ली के माध्यम से।
2. सचिव, राजस्व विभाग, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, नॉर्थ ब्लॉक, नई दिल्ली।
3. अध्यक्ष, केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड, राजस्व विभाग, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, नॉर्थ ब्लॉक, नई दिल्ली।
4. मुख्य आयकर आयुक्त, सीआर बिल्डिंग, स्टेच्यू सर्किल, बीडी रोड, जयपुर, राजस्थान।
5. जांच अधिकारी/आयकर आयुक्त (कोड संख्या 76034), मुख्य आयुक्त कार्यालय, सीआर बिल्डिंग, स्टेच्यू सर्किल, बीडी रोड, जयपुर, राजस्थान।

----प्रतिवादी

याचिकाकर्ता(ओं ) के लिए : श्री संदीप सिंह शेखावत  
प्रतिवादी(ओं ) के लिए : श्री संदीप पाठक,  
श्री पलाश गुप्ता,  
श्री शाश्वत शर्मा

माननीय श्रीमान. जस्टिस अवनीश झिंगन

माननीय न्यायमूर्ति आशुतोष कुमार

आदेश

**05/08/2024**

**अवनीश झिंगन, जे (मौखिक):**

1. यह याचिका केन्द्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, जयपुर पीठ, जयपुर (संक्षेप में 'न्यायाधिकरण') द्वारा पारित दिनांक 13.04.2023 के आदेश को रद्द करने की मांग करते हुए दायर की गई है, जिसमें याचिकाकर्ता द्वारा दायर मूल आवेदन (ओए) को खारिज कर दिया गया था।

2. संक्षिप्त तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता वर्ष 2002 में आयकर विभाग में सहायक आयुक्त के पद पर तैनात था। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (संक्षेप में 'अधिनियम') के तहत मामला दर्ज होने पर, याचिकाकर्ता को 26.06.2002 को निलंबित कर दिया गया और 06.11.2006 को आरोप पत्र जारी किया गया। याचिकाकर्ता ने प्रतिनिधित्व किया कि विभागीय कार्यवाही और अधिनियम के तहत मामले में आरोप और गवाहों की सूची समान थी, परिणामस्वरूप, आपराधिक मामले को अंतिम रूप देने तक अनुशासनात्मक कार्यवाही रोक दी जाए। विभागीय कार्यवाही को रोकने के लिए याचिकाकर्ता द्वारा दायर ओए को ट्रिब्यूनल ने 24.07.2012 को खारिज कर दिया और इस न्यायालय ने आदेश को बरकरार रखा। 18.09.2013 को, याचिकाकर्ता ने भारत संघ और अन्य बनाम बीवी गोपीनाथ और अन्य में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा करते हुए एक प्रतिनिधित्व दायर किया **(2014) 1 एससीसी 351** में रिपोर्ट किया गया था , जिसमें कहा गया था कि विभागीय कार्यवाही दोषपूर्ण है क्योंकि सक्षम प्राधिकारी की पूर्व स्वीकृति नहीं ली गई थी। 23.01.2014 को कार्योत्तर स्वीकृति प्रदान की गई। याचिकाकर्ता ने न्यायाधिकरण के समक्ष ओए दायर किया। प्रतिवादी ने आपत्ति उठाई कि दूसरा ओए पोषणीय नहीं है और याचिकाकर्ता ने पहले भी न्यायाधिकरण का दरवाजा खटखटाया था। आपत्ति को यह कहते हुए खारिज कर दिया गया कि कानून में बदलाव है और याचिकाकर्ता का दावा रेस-ज्यूडिकाटा के सिद्धांत के अपवादों के अंतर्गत आता है। पूर्व स्वीकृति के अभाव में कार्यवाही को अधिकार क्षेत्र से बाहर बताए जाने की याचिकाकर्ता की चुनौती को खारिज कर दिया गया।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि न्यायाधिकरण ने बी.वी. गोपीनाथ (सुप्रा) मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को भविष्योन्मुखी मानकर त्रुटि की है। सन्नी अब्राहम बनाम भारत संघ एवं अन्य **(2021) 20 एससीसी 2012** में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया गया है। तर्क यह है कि वित्त मंत्री की स्वीकृति के बिना शुरू की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही को कार्योत्तर अनुमोदन मान्य नहीं करेगा।

4. प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेश का बचाव किया है। दलील यह है कि यह मुकदमेबाजी का दूसरा दौर है और याचिकाकर्ता द्वारा दायर पूर्व ओए को न्यायाधिकरण ने खारिज कर दिया था। तर्क यह है कि कार्यवाही को बी.वी. गोपीनाथ (सुप्रा) के निर्णय के आधार पर चुनौती दी जा रही है, जो कार्यवाही शुरू होने के समय उपलब्ध नहीं था और इसके अलावा, वर्ष 2014 में पूर्वव्यापी अनुमोदन प्रदान किया गया था।

5. उभय पक्ष के अधिवक्ताओं को सुना गया तथा दलीलों का अवलोकन किया गया।

6. प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दूसरे ओए की स्वीकार्यता के संबंध में दिए गए तर्क को न्यायाधिकरण ने इस आधार पर खारिज कर दिया कि कानून में बदलाव हुआ है। प्रतिवादियों ने न्यायाधिकरण के निर्णय को चुनौती नहीं दी है। एक अन्य पहलू पर भी विचार किया जाना चाहिए कि पहले ओए में, आपराधिक मामले के लंबित रहने के दौरान विभागीय कार्यवाही पर रोक लगाने की याचिकाकर्ता की प्रार्थना को खारिज कर दिया गया था और किसी अन्य मुद्दे पर गुण-दोष के आधार पर निर्णय नहीं लिया गया था।

7. बी.बी. गोपीनाथ (सुप्रा) मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने केंद्रीय सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1965 के नियम 14 पर विचार करते हुए यह माना था कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी की स्वीकृति के बिना आरोप-पत्र जारी नहीं किया जा सकता।

8. यह मुद्दा कि क्या सक्षम प्राधिकारी की स्वीकृति के बिना अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने के दोष को कार्योत्तर अनुमोदन द्वारा पुष्ट किया जा सकता है, सनी अब्राहम (सुप्रा) मामले में विषयवस्तु था। यह माना गया कि जारी करने में मूलभूत दोषों के लिए अस्तित्व में न समझे जाने वाले किसी दस्तावेज़ के साथ कार्यवाही शुरू करने को बाद में किए गए कार्य के पुष्टीकरण द्वारा पुनर्जीवित नहीं किया जाएगा। निर्णय का प्रासंगिक अंश नीचे उद्धृत है:

“11. हमें नहीं लगता कि उपरोक्त नियम में अभिव्यक्ति “पूर्व अनुमोदन” की अनुपस्थिति का अब तक के वर्तमान मामले में कोई प्रभाव होगा क्योंकि बीबी गोपीनाथ (सुप्रा) के मामले में इस न्यायालय द्वारा समान नियम की व्याख्या की गई है और यह माना गया है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी के अनुमोदन के बिना आरोप पत्र / आरोप ज्ञापन कानून की नजर में गैर-कानूनी होगा। तमिलनाडु राज्य बनाम प्रमोद कुमार, आईपीएस और अन्य [(2018) 17 एससीसी 677] (हम में से एक, एल नागेश्वर राव, जे द्वारा लिखित) के मामले में इस न्यायालय की एक अन्य समन्वय पीठ द्वारा समान नियम, अखिल भारतीय सेवा (अनुशासन और अपील) नियम, 1969 की भी यही व्याख्या की गई है। अब सवाल यह उठता है कि क्या समाप्त कार्यवाही (जैसा कि बीबी गोपीनाथ के मामले में) और अपीलकर्ता के खिलाफ लंबित कार्यवाही उक्त नियम की अलग-अलग व्याख्या करने में सक्षम है कार्यवाही आरंभ करने की अनुमति दिए जाने का कारण यह है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने विशिष्ट आरोपों पर विचार किया था। हमारी राय में, अशोक कुमार दास (सुप्रा) और बजाज हिंदुस्तान लिमिटेड (सुप्रा) के मामलों में दिए गए निर्णयों का अनुपात वर्तमान मामले के तथ्यों

पर लागू नहीं होता। हम ऐसा इसलिए मानते हैं क्योंकि ये प्राधिकारी मुख्य रूप से इस प्रश्न पर विचार करते हैं कि क्या अनुमोदन प्रदान करने की कानूनी आवश्यकता पूर्वव्यापी अनुमोदन तक विस्तारित हो सकती है, विशेष रूप से ऐसे मामले में जहाँ वैधानिक साधन पूर्व या पूर्व अनुमोदन लेने का उल्लेख नहीं करता है। यह एक तथ्य है कि जिन नियमों से हम संबंधित हैं, उनमें "पूर्व" अनुमोदन लेने का कोई प्रावधान नहीं है। लेकिन चूँकि इसी नियम की व्याख्या एक समन्वय पीठ द्वारा इस आशय से की गई है कि आरोप ज्ञापन जारी करने से पहले अनुशासनात्मक प्राधिकारी का अनुमोदन आवश्यक है, इसलिए उपरोक्त दोनों मामलों, अर्थात् अशोक कुमार दास (सुप्रा) और बजाज हिंदुस्तान लिमिटेड (सुप्रा) में प्रतिपादित विधि के सिद्धांत प्रतिवादियों की सहायता नहीं करेंगे। पूर्व अनुमोदन और अनुमोदन के सरलीकरण के बीच के अंतर का , जहाँ तक स्थिति का प्रश्न है, बहुत अधिक प्रभाव नहीं पड़ता है। विषय प्रभार ज्ञापन का संबंध है।

12. यदि किसी कानूनी दस्तावेज़ को उसके जारी होने में कुछ मूलभूत दोष के कारण अस्तित्व में नहीं माना जाता है, तो बाद में अनुमोदन उसके अस्तित्व को पुनर्जीवित नहीं कर सकता है और ऐसे दस्तावेज़ के अनुसरण में किए गए कार्यों की पुष्टि नहीं कर सकता है, इसे वैध मानते हुए। कार्यवाही शुरू करने के लिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी की मंजूरी प्राप्त होने का तथ्य नियोक्ता (इस मामले में भारत संघ) की ओर से सीसीएस (सीसीए), 1965 के नियम 14 के उप-खंड (3) की आवश्यकता का पालन करने के दायित्व को हल्का नहीं कर सकता है। हमने इस फैसले में पहले दो प्रासंगिक उप-खंडों को उद्धृत किया है। नियम 14 के उप-खंड (2) और (3) दोनों चरणों में अनुशासनात्मक प्राधिकारी की स्वतंत्र मंजूरी पर विचार करते हैं - जांच शुरू करने के लिए और आरोप ज्ञापन तैयार करने या तैयार करवाने के लिए। यदि उप-खंड (2) की आवश्यकता का अनुपालन किया जाता है, तो आरोप ज्ञापन जारी करने के समय अनुमोदन न होना मौलिक रूप से दोषपूर्ण है, जिसे पूर्वव्यापी रूप से मान्य नहीं किया जा सकता है। जो कानून की नजर में अस्तित्वहीन है उसे पूर्वव्यापी रूप से पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता है। मृत आरोप ज्ञापन में जान नहीं फूँकी जा सकती। हमारी राय में, अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने की मंजूरी और आरोप ज्ञापन को मंजूरी दो विभाज्य कार्य हैं, प्रत्येक के लिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी की ओर से

स्वतंत्र विचार की आवश्यकता होती है। यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा आरोप जापन जारी करने के समय स्वतंत्र विचार के आवेदन की प्रक्रिया में कोई चूक होती है, तो इस तथ्य से इसे ठीक नहीं किया जा सकता कि प्रारंभिक चरण में ऐसी मंजूरी थी।

9. बी.वी. गोपीनाथ (सुप्रा) और सनी अब्राहम (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के मदेनजर, सक्षम प्राधिकारी की पूर्व स्वीकृति के बिना याचिकाकर्ता के खिलाफ शुरू की गई कार्यवाही को जारी नहीं रखा जा सकता है।

10. एक अन्य दृष्टिकोण यह है कि न्यायाधिकरण ने यह मानकर गलती की कि बी.वी. गोपीनाथ (सुप्रा) मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय भविष्य में लागू होगा। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 141 के तहत सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून देश का कानून है और उसी प्रकार लागू होगा जैसे कि वह कानून हो। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की भविष्य में होने वाली संभावना सामान्य नियम का अपवाद है। निर्णय में विशिष्ट निर्देशों के अभाव में, निर्णय पूर्वव्यापी प्रभाव से लागू होगा। इस संबंध में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा गोलक नाथ बनाम भारत संघ मामले में दिए गए निर्णय का संदर्भ दिया गया है, जो AIR 1967 SC 1643 में प्रकाशित हुआ है। निर्णय का प्रासंगिक अंश नीचे उद्धृत है:

"76. चूंकि इस न्यायालय को पहली बार एक अलग देश में, अलग-अलग परिस्थितियों में विकसित सिद्धांत को लागू करने के लिए कहा गया है, इसलिए हम शुरुआत में सावधानी से आगे बढ़ना चाहेंगे। हम निम्नलिखित प्रस्ताव प्रस्तुत करेंगे:

(1) भावी अधिनिर्णय के सिद्धांत को केवल हमारे संविधान के अंतर्गत उत्पन्न मामलों में ही लागू किया जा सकता है;

(2) इसे केवल देश के सर्वोच्च न्यायालय, अर्थात् सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ही लागू किया जा सकता है, क्योंकि इसके पास भारत के सभी न्यायालयों पर बाध्यकारी कानून घोषित करने का संवैधानिक अधिकार है; (3) सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अपने पहले के निर्णयों को अधिक्रमित करते हुए घोषित कानून के पूर्वव्यापी प्रभाव का दायरा उसके विवेक पर छोड़ दिया जाता है, जिसे उसके समक्ष मामले या कारण के न्याय के अनुसार ढाला जा सकता है।"

सर्वोच्च न्यायालय ने पी.वी. जॉर्ज एवं अन्य बनाम केरल राज्य एवं अन्य (2007) 3 एस.सी.सी. 557 के मामले में निम्नलिखित निर्णय दिया है:

“11. उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने निर्विवाद रूप से यह नहीं कहा कि पहले से दी जा चुकी पदोन्नतियों में कोई बाधा नहीं डाली जाएगी। पूर्ण पीठ का निर्णय अंतिम हो गया क्योंकि उसके विरुद्ध दायर विशेष अनुमति याचिका खारिज कर दी गई। केरल राज्य द्वारा 01.07.1980 और 30.08.1984 को संशोधित नियमों को बरकरार रखा गया। यदि उक्त नियमों को अंततः संवैधानिक माना जाता, तो उन्हें प्रभावी किया जाना आवश्यक था। न्यायालय द्वारा घोषित कानून आमतौर पर पक्षकारों के अधिकारों को प्रभावित करता है। हमारी न्याय वितरण प्रणाली की प्रतिकूल प्रणाली की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए एक न्यायालय न्यायिक भूमिका निभाता है। अतीत में घटित मामलों के संबंध में कानूनी परिणाम निर्धारित किए जाते हैं। यह सच हो सकता है कि जब एकाग्र निश्चय के सिद्धांत का पालन नहीं किया जाता है, तो कानून में बदलाव नागरिकों के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है। यद्यपि ऐसी स्थिति से निपटने के लिए भावी अधिनिर्णय के सिद्धांत का प्रयोग किया जाता है, लेकिन तब इसे स्पष्ट रूप से कहा जाना चाहिए। इस शक्ति का प्रयोग यथासंभव स्पष्ट रूप से किया जाना चाहिए। इस न्यायालय के निर्णय इस ओर स्पष्ट संकेत करते हैं।”

सुप्रीम कोर्ट ने सहायक आयुक्त, आयकर, राजकोट बनाम सौराष्ट्र कच्छ स्टॉक एक्सचेंज लिमिटेड के मामले में **(2008) 14 एससीसी 171** में कहा:

“ 42 . हमारे फैसले में, यह भी अच्छी तरह से स्थापित है कि एक न्यायिक निर्णय पूर्वव्यापी रूप से कार्य करता है। ब्लैकस्टोनियन सिद्धांत के अनुसार, न्यायालय का कार्य 'नया नियम' सुनाना नहीं है, बल्कि 'पुराने नियम' को बनाए रखना और उसकी व्याख्या करना है। दूसरे शब्दों में, न्यायाधीश कानून नहीं बनाते, वे केवल सही कानून की खोज करते हैं या पाते हैं। कानून हमेशा एक जैसा रहा है। यदि बाद का कोई फैसला पहले वाले फैसले को बदल देता है, तो यह (बाद वाला फैसला) नया कानून नहीं बनाता है। यह केवल कानून के सही सिद्धांत की खोज करता है जिसे पूर्वव्यापी रूप से लागू किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, जहाँ न्यायालय का कोई पिछला फैसला काफी समय तक लागू रहा, वहाँ बाद में दिए गए फैसले का पूर्वव्यापी प्रभाव होगा और कानूनी स्थिति को स्पष्ट करेगा जिसे पहले सही ढंग से नहीं समझा गया था।

43. सैल्मंड ने अपने प्रसिद्ध कार्य में कहा है;

निर्णय-विधि का सिद्धांत यह है कि न्यायाधीश कानून नहीं बनाता; वह केवल उसे घोषित करता है; और किसी पूर्व निर्णय को रद्द करना इस बात की घोषणा है कि वह कथित नियम कभी कानून नहीं था। इसलिए, कथित नियम के आधार पर किए गए किसी भी मध्यवर्ती लेन-देन को रद्द करने वाले निर्णय में स्थापित कानून द्वारा नियंत्रित किया जाता है। यह रद्द करना पूर्वव्यापी होता है, सिवाय उन मामलों के जो न्यायिक हैं या जिनका लेखा-जोखा इस बीच निपटाया जा चुका है।"

(जोर दिया गया)

नाथ बनाम भारत संघ, (1967) 2 एससीआर 762 के ऐतिहासिक निर्णय के बाद , इस न्यायालय ने 'संभावित अधिनिर्णय' के सिद्धांत को स्वीकार किया है। यह इस दर्शन पर आधारित है:

अतीत को हमेशा नई न्यायिक घोषणा से मिटाया नहीं जा सकता।

हालाँकि, यह कहा जा सकता है कि यह मिसाल के सिद्धांत के सामान्य नियम का अपवाद है।"

11. उपर्युक्त के मद्देनजर, सक्षम प्राधिकारी की स्वीकृति के बिना शुरू की गई न्यायाधिकरण का आदेश और जाँच कार्यवाही रद्द की जाती है। प्रतिवादी, यदि उसे ऐसा करने की सलाह दी जाए, तो कानून के अनुसार याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए स्वतंत्र होगा।

12. इस याचिका के लंबित रहने के दौरान कार्यवाही के अनुसरण में अंतिम आदेश पारित करने पर रोक लगा दी गई थी। याचिकाकर्ता मुकदमे के लंबित रहने के दौरान सेवानिवृत्त हो चुके हैं। प्रतिवादियों द्वारा यह निर्णय कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी रखी जाए या नहीं, इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने के छह महीने के भीतर लिया जाएगा।

13. तदनुसार रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

(आशुतोष कुमार), जे

(अवनीश झिंगन), जे

सिंपल कुमावत / आरजू /32

क्या रिपोर्ट योग्य है: हाँ

अस्वीकरण: इस निर्णय का अनुवाद स्थानीय भाषा में किया जा रहा है, एवं इसका प्रयोग केवल पक्षकार इसको समझने के लिए उनकी भाषा में कर सकेंगे एवं यह किसी अन्य प्रयोजन में काम

नहीं ली जायेगी। सभी आधिकारिक एवं व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए उक्त निर्णय का अंग्रेज़ी संस्करण ही विश्वसनीय माना जायेगा एवं निश्पादन एवं क्रियान्वयन में भी उसी को उपयोग में लिया जायेगा।



अधिवक्ता अविनाश चौधरी